# फिलिप्पियों

मसीही विश्वासियों के लिए "फिलिप्पियों" नामक बाइबॅल-पुस्तक का एक अध्ययन

# PHILIPPIYON

**First Hindi Edition : April-2009**

| | | |
|---|---|---|
| Translated into Hindi by | : | **J.P. Pandey** |
| Assisted by | : | **R.K. Khullar** |

*Originally published in English by the Fellowship Bible Church, 3217, Middle Road, Winchester, VA. 22602 (U.S.A.), with the title "Lessons in Philippians for Growing Believers", edited by Scott and Tim Mcmanigle, and the same is based on the New Tribes Mission's method of chronologically teaching the scriptures.*

Copyright © The Fellowship Bible Church, Winchester, VA. (U.S.A.). All rights reserved.

# विषय सूची


| अध्याय | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| एक | 5—9 |
| दो | 10—17 |
| तीन | 18—21 |
| चार | 22—27 |
| पांच | 28—34 |
| छः | 35—41 |
| सात | 42—45 |

# फिलिप्पियों

नामक

बाइबॅल–पुस्तक का एक संक्षिप्त अध्ययन

# एक

संत पौलुस की द्वितीय मिषनरी यात्रा के दौरान यूरोप के फिलिप्पी नामक नगर में एक मंडली की स्थापना हुयी थी। कुछ समय पष्चात् जब पौलुस एक रोमी जेल में था, तब उसने "फिलिप्पयों" की मंडली के नाम यह पत्री लिखी। *"मसीह यीशु के दास पौलुस और तीमुथिमुस की ओर से, मसीह में उन सब पवित्र लोगों को जो अध्यक्षों और सेवकों सहित फिलिप्पी में रहते हैं"* (फिलि0 1:1)। इस पत्री के लिखते समय पौलुस से भेंट करने के लिए तीमुथियुस भी वहां उपस्थित था। यहां पहले पद में पौलुस ने स्वयं को तथा तीमुथियुस को "मसीह यीषु के दास" (तत्पर सेवक) कहा है। परमेष्वर के प्रेम की पौलुस को अद्भुत समझ प्राप्त थी और परमेष्वर के प्रेम में उसका अद्भुत विष्वास था – ऐसी समझ एवं ऐसा विष्वास जिसने उसमें पापी मनुष्य के प्रति अनुग्रह व दया तथा ईष्वरीय सेवा के लिए तीव्र आकांक्षा पैदा की। दूसरा कुरिंथियों 5:14 के अनुसार "मसीह का प्रेम हमें विवष करता है" (प्रेरणा प्रदान करता है)।

हम जैसे–जैसे परमेष्वर के अनुग्रह एवं ज्ञान में बढ़ते हैं, वैसे–वैसे मसीह की गहरी सहभागिता में तथा उसकी इच्छा पूरी करने की दिषा में बढ़ते जाते हैं। ध्यान दें कि यह पत्री फिलिप्पी की मंडली अर्थात् वहां के विष्वासियों के लिए लिखी गई थी। बहरहाल, इस पत्री के वर्तमान महत्व को नहीं भूलना चाहिए – यह हमारे लिए भी है, क्योंकि हम भी 'मसीह की देह' के अंग हैं। यहां यह भी ध्यान दें कि पौलुस ने वहां की कलीसिया के अध्यक्षों और सेवकों

(बिषपों और डीकनों अर्थात् मंडली के अगुवों) को सम्बोधित करते हुए यह पत्री लिखी। तात्पर्य यह है कि कलीसिया के अगुवों को ऐसे विष्वासी मसीही होना है जिनके जीवन की जड़ सत्य में गहरी हो और आत्मा के चलाए जीवन व्यतीत करने वाले लोग हों। पौलुस ने वहां के आत्मिक अगुवों को यह बताया कि इस पत्री में शामिल सच्चाईयां एवं निर्देष उनके लिए भी हैं। कलीसियाई अगुवे होने का मतलब यह नहीं है कि हमें सीखने, सुनने या षिक्षा पाने की जरूरत नहीं रह गई। अगुवों को सदैव सीखने–सुनने के लिए तत्पर रहना है।

*"हमारे पिता परमेष्वर और प्रभु यीषु मसीह की ओर से तुम्हें अनुग्रह व शांति मिले"* (फिलि0 1:2)। यह कथन पौलुस द्वारा लिखी गई प्रत्येक पत्री में इसलिए पाया जाता है क्योंकि वह यह समझता था कि मंडली के लिए परमेष्वर के अनुग्रह एवं उसकी शांति के महत्व को तथा इस बात के महत्व को जानना–पहचानना बहुत आवष्यक है कि सच्ची शांति व अनुग्रह सिर्फ मसीह द्वारा पूर्ण किए गये ईष्वरीय उद्धार–कार्य के माध्यम से ही उपलब्ध है, न कि हमारे द्वारा किए गये किसी प्रकार के कर्म द्वारा। परमेष्वर की शांति का ज्ञान एवं अनुभव तब मिलता है जबकि हम मसीह के ज्ञान में तथा हमारे बदले उसके द्वारा सम्पन्न किए गये उद्धार–कार्य के ज्ञान–समझ में (आत्मिक) उन्नति करते हैं।

*"जब कभी मैं तुम्हें स्मरण करता हूँ, अपने परमेष्वर को धन्यवाद देता हूं, तथा आनन्द के साथ तुम्हारे लिए सदा प्रार्थना करता हूं, क्योंकि पहिले ही दिन से आज तक तुम सुसमाचार में मेरे सहभागी रहे हो"* (फिलि0 1:3–5)। प्रभु परमेष्वर ने पौलुस को फिलिप्पी में सुसमाचार प्रचार के लिए इस्तेमाल करते हुए, वहां कलीसिया स्थापित की। उन विष्वासियों के लिए पौलुस एक ऐसे

आत्मिक पिता समान था जिसके मन में उनके प्रति बहुत प्रेम था। उन्हें याद करने पर वह परमेष्वर को बहुत धन्यवाद दिया करता था। इतना ही नहीं, फिलिप्पी के विष्वासियों के लिए प्रार्थना करने से उसे बड़ा आनन्द होता था। इससे दो बातें स्पष्ट हैं : फिलिप्पी के विष्वासियों के प्रति पौलुस का प्रेम, तथा परमेष्वर के साथ उसकी सुसंगति। अतः पौलुस द्वारा उनके लिए परमेष्वर से प्रार्थना करना एक आनन्द की बात थी। इसके विपरीत जब हम शारीरिकता के चलाए जीवन व्यतीत करते हैं तब इतना अधिक स्व–केन्द्रित (स्वार्थी) होते हैं कि अपने अलावा दूसरों के प्रति सच्चा प्रेम नहीं रखते और दूसरों के लिए परमेष्वर से (सच्ची) प्रार्थना करने में भी असफल रहते हैं। ऐसे विष्वासियों का आनन्द अपने स्वार्थ–सिद्धि में केन्द्रित होता है, परमेष्वर में नहीं। फिलिप्पी की मंडली पौलुस के साथ सेवा–सहयोग करते हुए सुसमाचार प्रचार में सहभागी थी। वे अपने से अधिक जरूरतमंद कलीसियाओं के लिए दान एकत्रित किए, और इसके अलावा संत पौलुस एवं उसके साथियों की व्यक्तिगत भौतिक जरूरतों को भी पूरा करने में हाथ बंटाए।

*"मुझे इस बात का निष्चय है कि जिसने तुम में भला कार्य आरम्भ किया है, वही उसे मसीह यीषु के दिन तक पूर्ण भी करेगा"* (फिलि0 1:6)। यहां दो महत्वपूर्ण सच्चाईयां पायी जाती हैं जिन्हें समझने पर वर्षों की कड़ी मषक्कत (स्व–प्रयास या कर्म–बंधन) व संघर्ष से बचा जा सकता है। पहली सच्चाई यह है कि फिलिप्पयों की मंडली के उन विष्वासियों में यह आध्यात्मिक कार्य प्रभु परमेष्वर ने प्रारम्भ किया। यही बात हमारे बारे में भी सच है : प्रभु परमेष्वर ने हमें चुना है (इफि0 1:4), परमेष्वर ने ही हमें ढूंढ़ा और अपने पास लाया (यूह0 6:44)। अपने उद्धार के कर्ता हम नहीं हैं। दूसरी प्रमुख सच्चाई यह है कि चूंकि इस उद्धार एवं पवित्रीकरण के कार्य का

कर्ता (मूल स्रोत एवं शुरुआत करने वाला) प्रभु परमेष्वर ही है, अतएव वही इसे समाप्त या पूर्ण भी करेगा। (भजन0 138:8; प0 थिस्स0 5:24)।

*"तुम्हारे विषय में ऐसा विचार करना मेरे लिए सर्वथा उचित है, क्योंकि तुम मेरे मन में बसे हो, इसलिए कि तुम सब मेरी कैद में, सुसमाचार की रक्षा और उसके पुष्टिकरण में मेरे साथ अनुग्रह के सहभागी हो। परमेष्वर इस बात में मेरा साक्षी है कि मैं मसीह यीषु के प्रेम से तुम सबके लिए कितनी लालसा करता हूँ"* (फिलि0 1:7–8)। पौलुस के मन में फिलिप्पयों के विष्वासियों के प्रति प्रेमभाव उमड़ रहा था, क्योंकि वे उसके आत्मिक संतान समान होने के अतिरिक्त सुसमाचार की अभिपुष्टि (संरक्षा) एवं समर्थन में उसके सहभागी भी थे। फिलिप्पयों की मंडली के विष्वासी सिर्फ अपने उद्धार (क्षमा–प्राप्ति व धर्मी ठहराए जाने) मात्र के लिए ही नहीं, बल्कि अपने पवित्रीकरण (आत्मिक विकास प्रक्रिया) के लिए भी मसीह द्वारा क्रूस पर सम्पन्न (पूर्ण) किए गये कार्य पर विष्वास–विश्राम किए, और पौलुस के साथ सेवा में सहभागी होकर दूसरों तक यह संदेष पहुंचाने में लगे रहे। अनुग्रह के संदेष का प्रचारक होने के कारण पौलुस को प्रायः लोगों की आलोचना का सामना करना पड़ा। अतः ऐसे समय में फिलिप्पयों की मंडली से अनुग्रह के संदेष के इस प्रचारक को सेवा–सहयोग एवं समर्थन मिलना अवष्य एक सुखद अनुभव रहा होगा। इसीलिए पौलुस लिखता है कि वह "मसीह यीषु के प्रेम से" उनकी संगति का आकांक्षी था – क्योंकि कलीसिया के प्रति ख्रीष्ट के प्रेम से बढ़कर अन्य कोई प्रेम नहीं।

*"मेरी प्रार्थना यही है कि तुम्हारा प्रेम सच्चे ज्ञान और पूर्ण समझ सहित निरन्तर बढ़ता जाए, जिससे कि तुम उन बातों को जो*

*सर्वोत्तम हैं अपना लो और मसीह के दिन तक पूर्णतः सच्चे और निर्दोष बने रहो; धार्मिकता के फल से जो यीषु मसीह के द्वारा प्राप्त होता है, परिपूर्ण होते जाओ, जिस से परमेष्वर की महिमा और स्तुति होती रहे"* (फिलि0 1:9–11)। फिलिप्पियों के लिए पौलुस की प्रार्थना की विषय–वस्तु पर ध्यान दें। फिलिप्पी के विष्वासियों के लिए उसने यह प्रार्थना किया कि वे अधिकाधिक आत्मा के चलाए जीवन बिताएं और मसीह के जीवन (स्वभाव) से भरपूर होते जाएं; ताकि मसीह के पुनरागमन से पूर्व सच्चे (ईमानदार व निष्कपट) एवं निर्दोष जीवन में विकसित होते जाएं। प्रत्येक विष्वासी की यही प्रमुख आवष्यकता है – शारीरिकता के बजाय **आत्मा** के अधीन जीवन व्यतीत करने में विकसित होते रहना, और इसके परिणामस्वरूप मसीह के स्वभाव में परिवर्तित (निर्मित) होते जाना। जो लोग प्रभु यीषु मसीह में उपलब्ध अपनी आध्यात्मिक आषिषों से अनजान रहते हैं, वे नये हालात में सुख–सुविधा पाने के लिए प्रार्थना करते रहते हैं। लेकिन पौलुस ने फिलिप्पी के विष्वासियों की भौतिक परिस्थितियों में परिवर्तन के लिए प्रार्थना नहीं किया। उसकी प्रार्थना यह थी कि वे विष्वासी 'मसीह द्वारा क्रूस पर पूर्ण किए गये महाकार्य' पर विष्वास–विश्राम में और अधिक सुस्थिर होते जाएं।

# दो

*"अब हे भाइयों, मैं तुम्हें यह बता देना चाहता हूँ कि जो कुछ मुझ पर बीता है उस से सुसमाचार की उन्नति ही हुई है, यहां तक कि कैसर के अंगरक्षकों एवं अन्य सब लोगों में यह बात प्रकट हो गई है कि मैं मसीह के लिए कैद में हूं। मेरे बन्दी होने के कारण अधिकांष भाई प्रभु में भरोसा रखते हुए परमेष्वर का वचन और भी अधिक साहस तथा निर्भयता के साथ सुनाते हैं"* (फिलि0 1:12–14)। कठिनाईयों, समस्याओं एवं विषम परिस्थितियों के प्रति (पवित्र आत्मा के अधीन जीवन व्यतीत करने वाले) विष्वासी की प्रतिक्रिया का कितना रोचक एवं महत्वपूर्ण उदाहरण! स्मरण रहे कि फिलिप्पी के मसीहियों को पौलुस ने यह बातें तब लिखीं जब वह एक जेल में कैद था। ध्यान दें कि वह अपने प्रति लोगों की सहानुभूति नहीं चाह रहा था और न ही अपने कैद–मुक्त होने के लिए प्रार्थना करने की बात कह रहा था – वह अहं–केन्द्रित नहीं था। इसके बजाय पौलुस यह लिखता है कि 'उस पर जो कुछ बीता है', उसे प्रभु परमेष्वर ने सुसमाचार–प्रचार हेतु इस्तेमाल किया है। अत्याधिक अत्याचार एवं अन्यायपूर्ण दुर्व्यवहार को सहते हुए भी पौलुस ने दूसरों के उद्धार की इतनी अधिक चिन्ता कैसे की? उत्तर स्पष्ट है : पौलुस (पवित्र) आत्मा की अधीनता में जीवन जी रहा था। आत्मा के अधीन जीवन व्यतीत करने पर स्वार्थ–सिद्धि या अहं–केन्द्रितता के बजाय "मसीह" हमारे जीवन का केन्द्र–बिन्दु (जीवन–उद्देष्य) हो जाता है। आत्मा के अधीन जीवन व्यतीत करने पर "सुसमाचार की उन्नति" के लिए किसी भी प्रकार का अन्याय व अत्याचार सहन करना सम्भव हो जाता है। इसके विपरीत शारीरिकता का जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति सुसमाचार के लिए अत्याचार व अन्याय सहन नहीं करना चाहता।

पौलुस को इस बात की खुषी थी कि उसका जेल जाना दूसरे विष्वासियों के लिए एक उत्साहवर्धक उदाहरण साबित हुआ। वे और अधिक साहस से सुसमाचार–प्रचार करने लगे। उसका जेल में डाल दिया जाना (मात्र) ही दूसरे मसीहियों के लिए उत्साह का कारण नहीं था, बल्कि जेल में डाले जाने के प्रति पौलुस की प्रतिक्रिया ने उनके लिए प्रोत्साहन प्रदान किया। अपने कारावास के प्रति पौलुस की प्रतिक्रिया ने सुसमाचार के प्रति उसके दृष्टिकोण को प्रकट किया – परमेष्वर का सुसमाचार इतना महत्वपूर्ण है कि इसके लिए जेल जाना भी मंजूर है। इस प्रसंग में तेरहवें पद का यह वाक्यांष रोचक है : "राजभवन और जनसाधारण में यह बात अब सब जगह फैल गई है कि मैं मसीह के कारण बन्दी हूँ"। पौलुस लगभग दो वर्ष तक रोम की जेल में कैद रहा। उस समय लगातार एक सैनिक (जंजीर में बंधे हुए) पौलुस की रखवाली करता था। उन दो सालों में सम्भवतः ऐसे कई अंगरक्षकों को सुसमाचार सुनने का मौका मिला होगा, और इस प्रकार राजमहल के तमाम लोगों को सुसमाचार के बारे में जानकारी होने लगी थी। रोमियों की पुस्तक के आठवें अध्याय के अट्ठाइसवें पद की बात को याद करें। पवित्रशास्त्र के अनेक उदाहरण तथा हमारे जीवन के अनेक अनुभव इस सच्चाई को प्रमाणित करते हैं कि परमेष्वर सब बातों (परिस्थितियों व घटनाओं) के द्वारा भलाई ही उत्पन्न करता है। उत्पत्ति की पुस्तक में वर्णित युसुफ की जीवनी भी इस सच्चाई की एक तस्वीर पेष करती है कि प्रभु परमेष्वर कैसे किसी खराब परिस्थिति को अच्छी परिस्थिति में बदल देता है।

*"कुछ तो ईर्ष्या और द्वेष के कारण मसीह का प्रचार करते हैं, परन्तु कुछ सद्भाव से। वे जो प्रेम से प्रचार करते हैं जानते हैं कि मैं सुसमाचार की रक्षा के लिए ठहराया गया हूं। अन्य लोग तो भले उद्देष्य से नहीं परन्तु अपनी स्वार्थमय अभिलाषा से यह सोचकर मसीह का प्रचार करते हैं कि बन्दीगृह में मेरे लिए क्लेष*

*उत्पन्न हो। तो क्या हुआ? केवल यह कि चाहे कपट से, चाहे सच्चाई से, मसीह का प्रचार सब प्रकार से होता है – इस कारण मैं आनन्दित हूं, और आनन्दित रहूंगा भी"* (फिलि0 1:15–18)। पवित्रशास्त्र की षिक्षा देने वालों में दो प्रकार के लोग पाए जाते हैं – एक वह लोग जो (पवित्र) **आत्मा** के अधीन वचन की षिक्षा देते हैं; दूसरे वह लोग जो शारीरिकता में वचन सिखाते हैं। उस समय भी ऐसे लोग थे जो कलीसियाओं में अपने नाम कमाई के लिए विख्यात षिक्षक बनने की होड़ में थे और अपनी शारीरिकता में पौलुस की बराबरी करना चाह रहे थे। इसीलिए पौलुस लिखता है कि कुछ लोग "बन्दीगृह में मेरे लिए क्लेष उत्पन्न" करने के लिए स्वार्थपूर्ण अभिलाषा से प्रचार कर रहे थे। ऐसे मौकापरस्त लोग, जेल में बन्द पौलुस की कलीसिया में अनुपस्थिति का गलत फायदा उठाते हुए, मसीहियों के मध्य अपने आपको ऊँचा ठहराने में लगे थे। शारीरिकतापूर्ण जीवन व्यतीत करने वालों की धोखेबाजी का यह एक नमूना है। सुसमाचार की उन्नति हेतु जेल से पौलुस के छुटकारे की शुभकामना करने के बजाय ऐसे स्वार्थी षिक्षक, मंडली में अपने प्रमोषन के वास्ते, पौलुस की अनुपस्थिति अर्थात् उसके कारावास से खुष थे। शारीरिकता दूसरों के उद्धार की चिन्ता नहीं करती। शारीरिकता के अधीन हम सिर्फ अपने मान–सम्मान व बड़ाई के लिए सुसमाचार–प्रचार करते हैं, दूसरों के प्रति सच्ची चिन्ता व प्रेमवष नहीं।

इसके विपरीत ऐसे लोग भी होते हैं जो सच्चे प्रेमवष सुसमाचार का प्रचार करते हैं। पौलुस के समय भी ऐसे प्रभु–भक्त सेवक थे। ये लोग **आत्मा** के चलाए जीवन व्यतीत करते हैं। सच्चा (ईष्वरीय) **प्रेम** पवित्र आत्मा का फल है। सम्भव है कि फिलिप्पयों की मंडली में ऐसे भी कुछ लोग थे जो पौलुस के जेल जाने से पूर्व उसकी षिक्षा को ग्रहण किए थे और उससे प्रेम करते थे, किन्तु सुसमाचार–प्रचार की सेवकाई में उनका कोई खास योगदान नहीं

था। बहरहाल, पौलुस के कैद कर लिए जाने के बाद, ऐसे लोग उसकी षिक्षा के समर्थक होने के कारण तथा उसके प्रेमी होने के कारण (उसकी अनुपस्थिति से उत्पन्न स्थिति में) सुसमाचार–प्रचार के काम को आगे बढ़ाने में लग गए थे। अतः पौलुस यह लिखता है कि सुसमाचार–प्रचार के पीछे लोगों की चाहे जो मनसा हो, उसे खुषी इस बात की थी कि **मसीह** का प्रचार हो रहा था। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि **आत्मा** के द्वारा चलाए जाने पर हम सदैव **मसीह** में लवलीन रहने (प्रभु पर दृष्टि रखने) की दिषा में उन्मुख किए जायेंगे। इसके विपरीत, शारीरिकता हमें (मसीह के बजाय) अन्य चीजों में लवलीन करने की दिषा में ले जाएगी। अन्याय और दुर्व्यवहार का षिकार होने के बावजूद पौलुस की दृष्टि स्वयं के बजाय प्रभु यीषु मसीह पर ही लगी रही।

*"क्योंकि मैं यह जानता हूँ कि तुम्हारी प्रार्थनाओं और यीषु मसीह के आत्मा की सहायता से इस कैद का प्रतिफल मेरा छुटकारा होगा"* (फिलि0 1:19)। "इस कैद का प्रतिफल मेरा छुटकारा होगा" शब्दों के द्वारा पौलुस क्या कह रहा था? कुछ लोग इन शब्दों को उसके जेल से रिहा होने का इषारा मानते हैं; अर्थात् विष्वासियों की निरन्तर प्रार्थना के अनुसार जेल से उसके छूटने की संभावना। परन्तु इन शब्दों का अर्थ समझने के लिए इस पाठांष के पूरे प्रसंग पर ध्यान देना जरूरी है। इससे पूर्व की पंक्तियों में पौलुस इस बात से प्रोत्साहित एवं आनन्दित था कि प्रभु परमेष्वर उसके कारावास को सुसमाचार–प्रसार हेतु इस्तेमाल कर रहा था। अतएव पौलुस द्वारा प्रयुक्त "छुटकारा" शब्द आत्मा की संरक्षा के अर्थ में प्रयोग किया गया है, न कि जेल से रिहाई के लिए। घोर दुर्व्यवहार एवं बड़ी–बड़ी कठिनाइयों को सहते हुए भी पौलुस ने अपने जीवन में पवित्र आत्मा के काम को निरन्तर प्रभावकारी होने दिया। बेषक, वह इस तथ्य से प्रोत्साहित था कि फिलिप्पी के विष्वासी उसके लिए प्रार्थना कर रहे थे। अतः वह अपनी कठिनाइयों के कारण निराष व

हताष होने के बजाय विष्वास की गहराई, धन्यवादपूर्णता (कृतज्ञता) एवं आत्मा के आनन्द (आत्मिक आनन्द) में बढ़ता जा रहा था।

*"मेरी हार्दिक आषा और अभिलाषा यह है कि मैं किसी बात में लज्जित न होऊं, परन्तु जैसे पूरे साहस से मसीह की महिमा मेरी देह से सदा होती रही है वैसे ही अब भी हो, चाहे मैं जीवित रहूं या मर जाऊँ। क्योंकि मेरे लिए जीवित रहना तो मसीह, और मरना लाभ है"* (फिलि0 1:20–21)। पौलुस इस सच्चाई के प्रति आष्वस्त था कि फिलिप्पी के विष्वासियों की प्रार्थना के अनुसार परमेष्वर एवं पवित्र आत्मा के कार्य के परिणामस्वरूप उसकी आत्मा को संरक्षा एवं प्रोत्साहन प्राप्त होगा; क्योंकि यह परमेष्वर की इच्छा–योजना के अनुसार था जो उसके जीवन से अपनी (ईष्वरीय) महिमा कराना चाहता था। अतः परिस्थितियों के वषीभूत होकर जीवन बिताने के बजाय पौलुस ने पवित्र आत्मा की अधीनता में जीवन व्यतीत करना चाहा, ताकि शारीरिकता से उत्पन्न होने वाली प्रतिक्रियाओं एवं प्रत्युत्तर (कार्य–व्यवहार) से लज्जित न हो। इसीलिए वह यह कहता है कि 'मरने अथवा जीवित रहने' के बजाय अपने जीवन से मसीह की महिमा होने देना ज्यादा महत्वपूर्ण है। यदि परमेष्वर उसे इस धरती पर ज्यादा दिन देता तब भी वह अपने जीवन के द्वारा मसीह के जीवन–स्वभाव को ही प्रतिबिम्बित करना चाहता था। इसके विपरीत जल्दी देहान्त को भी उसने लाभकारी माना, क्योंकि यह उसे प्रभु की उपस्थिति में ले जाता। पवित्र आत्मा अपनी सेवकाई के द्वारा प्रभु के विष्वासियो की दृष्टि को मसीह की ओर लगाता है। यदि हम पवित्र आत्मा की अधीनता में जीवन व्यतीत कर रहे हैं तो हम भी दूसरों को प्रभु की ओर दृष्टि लगाने के लिए प्रोत्साहित करेंगे (दू0 कुरि0 4:5)।

*"परन्तु यदि सदेह जीवित रहूं तो इसका अर्थ मेरे लिए फलदायी परिश्रम है, परन्तु मैं किस बात को चुनूं, यह नहीं जानता। मैं इन दोनों के बीच असमंजस में पड़ा हूं। मेरी लालसा तो यह है*

*कि कूच करके मसीह के पास जा रहूँ, क्योंकि यह अति उत्तम है, परन्तु तुम्हारे कारण शरीर में जीवित रहना मेरे लिए अधिक आवष्यक है। इसलिए कि मुझे इसका भरोसा है, मैं जानता हूँ कि मैं जीवित रहूंगा, वरन् तुम सबके साथ रहूंगा जिस से तुम विष्वास में दृढ़ होते जाओ तथा उसमें आनन्दित रहो, जिस से कि जो घमंड तुम मेरे विषय में करते हो वह मेरे फिर तुम्हारे पास लौट आने से मसीह यीषु में और अधिक बढ़ जाए"* (फिलि0 1:22–26)। पौलुस कहता है कि यदि परमेष्वर उसे इस धरती पर और अधिक दिनों तक जीवित रखता है तो यह फलदायी सेवा का मौका होगा, और ऐसी सेवा फिलिप्पी के विष्वासियों के लिए सहायक, लाभकर, आवष्यक एवं महत्वपूर्ण होगी। बहरहाल यदि परमेष्वर उसे इस पतित संसार से जल्दी उठा लिया तो यह भी पौलुस के लिए लाभकर होगा, क्योंकि तब तो वह इस पाप व मृत्यु के रंग में डूबे संसार से छुटकारा पाकर अपने प्रभु परमेष्वर की उपस्थिति में होगा। चूंकि पौलुस दोनों हालात में से किसी को भी ग्रहण करने के लिए तैयार था, इसलिए किसी एक को प्राथमिकता देने में कठिनाई महसूस कर रहा था; और अन्ततः अपने जीवन के लिए परमेष्वर की इच्छा–योजना पर ही आषा–भरोसा रखना बेहतर समझा। प्रभु परमेष्वर से पौलुस की प्रत्याषा तथा उस पर उसके दृढ़ विष्वास एवं भरोसे की एक झलक उसके इस वाक्यांष में दिखाई देती है : "यदि सदेह जीवित रहूं तो इसका अर्थ मेरे लिए फलदायी परिश्रम है"। परमेष्वर तथा उसके अनुग्रह के बारे में पौलुस का दृष्टिकोण इतने अधिक आषा–भरोसा से भरपूर था कि उसने इसके अलावा अन्य किसी आधार पर जीवन व्यतीत नहीं करना चाहा।

कुछ मसीही लोग अपने कार्य–व्यवहार के बारे में बहुत अनिष्चित दिखते हैं : "प्रभु ने चाहा तो मैं उसका आज्ञाकारी बना रहूंगा," अथवा "आषा करता हूं कि वैसा पाप मैं नहीं करूंगा"। हमारे मन को मसीह में लवलीन करने के लिए पवित्र आत्मा हमारे

जीवन में कार्यरत है, ताकि हममें मसीह का जीवन (स्वभाव) निर्मित (पुनरुत्पादित) हो। विष्वासीजन को मसीह में प्राप्त अपने स्थापना–अधिकार व आषिष की इतनी सुदृढ़ समझ होनी चाहिए कि वर्तमान जीवन सिर्फ (पाप व निराषा में गिरने–उठने का) संघर्ष ही न रह जाए, बल्कि 'जीवित रहने का मतलब मसीह' हो। प्रभु से प्राप्त इस भरोसे का एक संकेत पच्चीसवें पद में दिखाई देता है कि वह उस कैद से छुटकारा पाने वाला था। बेषक, उसे उस कारावास से रिहाई मिली, किन्तु बाद में उसे पुनः कैद में डाल दिया गया और अन्ततः सजाए मौत।

*"केवल इतना करो कि तुम्हारा आचरण मसीह के सुसमाचार के योग्य हो, जिस से चाहे मैं आकर तुम्हें देखूं अथवा दूर रहूं, मैं तुम्हारे विषय में यही सुनूं कि तुम एक आत्मा में स्थिर हो तथा एक मन होकर, एक साथ मिल कर सुसमाचार के विष्वास के लिए संघर्ष करते हो और विरोधियों से किसी प्रकार भयभीत नहीं होते। यह उनके लिए तो विनाष का, परन्तु तुम्हारे लिए उद्धार का स्पष्ट चिन्ह है, जो परमेष्वर की ओर से है। क्योंकि मसीह के कारण तुम पर यह अनुग्रह हुआ कि तुम उस पर केवल विष्वास ही न करो वरन् उसके लिए कष्ट भी सहो, अर्थात् तुम भी वैसे ही संघर्ष करते रहो जैसा तुमने मुझे करते देखा और सुनते हो कि अब भी कर रहा हूं"* (फिलि0 1:27–30)। यहां विष्वासियों के लिए पौलुस द्वारा दी गयी सलाह पर ध्यान दें : "तुम्हारा आचरण मसीह के सुसमाचार के योग्य हो"। शारीरिकता का जीवन स्वार्थ–केन्द्रित होता है और प्रभु के बजाय अपने मान–सम्मान को प्राथमिकता देता है। परन्तु पवित्र आत्मा के अधीन जीवन बिताने वाला विष्वासी मसीह पर दृष्टि लगाता है और दूसरों को भी प्रभु की ओर ही दृष्टि लगाने का प्रोत्साहन देता है। ऐसे विष्वासी जन का चाल–चलन एवं बातचीत सुसमाचार के अनुकूल होता है। पौलुस के अगले परामर्ष पर ध्यान दें : " एक आत्मा में स्थिर हो"। सुदृढ़ एकता में एक ही उद्देष्य से

सुसमाचार प्रचार हेतु परिश्रम करते रहो। स्मरण रहे कि शारीरिकता में ऐसा करने पर हम स्वार्थ–केन्द्रित प्रतियोगिता और अपनी नाम कमाई में लगे रहेंगे; परन्तु पवित्र आत्मा की अधीनता में होने पर हम अपने लक्ष्य (मसीह) में लवलीन रहते हुए उसके साथ एकता में होंगे (**आत्मा** की एकता में एक मन होकर स्थिरता के साथ सेवारत)। पवित्र आत्मा के चलाए ऐसा जीवन व्यतीत करने वाले विष्वासी, विरोधियों के डराने–धमकाने से भयभीत नहीं होते, क्योंकि ऐसे विष्वासी अपना जीवन परमेष्वर के हाथों में सौंपते हुए जिन्दगी जीते हैं। ऐसी जीवन–षैली दूसरों के समक्ष इस सच्चाई की साक्षी होती है कि विष्वासीजन उस महान सत्ता–सामर्थ्य पर आषा–भरोसा रखकर जीवन व्यतीत करता है जो उनकी (अर्थात दूसरों की) शक्ति से अत्याधिक महान है, और अन्ततः वही महानतम् सत्ता–सामर्थ्य ही यह सुनिष्चित करती है कि विष्वासीजन के साथ 'दूसरे लोग' कैसा व्यवहार करेंगे (विष्वासियों के साथ विरोधी लोग क्या कर सकेंगे और क्या नहीं कर सकेंगे)। हां, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मसीह के लिए सतावट आना अवष्यम्भावी है (प0 पत0 2:21)। शरीर के अनुसार जीवन व्यतीत करने वाला जन ऐसी सतावट से बचने का प्रयास करेगा। इसके विपरीत आत्मा के अनुसार जीवन बिताने वाले विष्वासी की दृष्टि ख्रीष्ट–केन्द्रित होती है और यदि मसीह में लवलीन रहने के कारण उसे सतावट का सामना करना पड़ता है तो वह इसे सहर्ष स्वीकार करता है (क्योंकि मसीह की अनन्त महानता व महिमा के समक्ष ऐसी सतावट नगण्य व अस्थाई है)। ऐसे विष्वासी के लिए जीवन जीने का मतलब "मसीह" है (फिलि0 1:21)।

# तीन

*"अतः यदि तुम्हें मसीह में कुछ प्रोत्साहन, प्रेम की सांत्वना, आत्मा की सहभागिता, प्रीति और सहानुभूति है, तो मेरा आनन्द पूर्ण करने के लिए एक ही मन, एक ही प्रेम, एक ही भावना और एक ही दृष्टिकोण रखो"* (फिलि0 2:1–2)। फिलिप्पियों की पत्री के पहले अध्याय के सत्ताईसवें पद में पौलुस ने उस मंडली के विष्वासियों को "एक आत्मा में स्थिर तथा एक मन होकर... सुसमाचार के विष्वास के लिए" संघर्षरत रहने के लिए प्रोत्साहित किया। अब इस दूसरे अध्याय में उन्हें यह दर्षाता है कि इसे कैसे करना है। फिलिप्पी के विष्वासी **मसीह में** होने से प्राप्त प्रोत्साहन तथा उसके प्रेम की सांत्वना का रसास्वादन कर चुके थे, और उसके प्रेम एवं सहानुभूति को प्रकट करते हुए आत्मा के अनुसार जीवन बिताने का मतलब भी जानते थे। चूंकि मसीह के साथ हमारी सहभागिता में यह सच्चाईयां हमारे हृदय में राज्य करती हैं, इसलिए दूसरों के साथ हमारी सहभागिता भी इन्हीं सच्चाईयों पर आधारित होनी चाहिए, जिससे कि एक दूसरे के साथ एकता, प्रेम व दयापूर्ण सहभागिता विकसित हो। अक्सर मसीही लोगों का जीवन ऐसा दिखता है जैसे कि मसीह से उन्हें कुछ नहीं मिला है, जैसे कि मसीह के प्रेम से सांत्वना नहीं पाए हैं, जैसे कि आत्मा की सहभागिता न मिली हो और शारीरिकता में ही जीवन जी रहे हों, जैसे कि मसीह हमारे वास्ते बलिदान ही नहीं हुआ।

*"स्वार्थ और मिथ्याभिमान से कोई काम न करो, परन्तु नम्रतापूर्वक अपनी अपेक्षा दूसरों को उत्तम समझो। तुम में से प्रत्येक अपना ही नहीं, परन्तु दूसरों के हितों का भी ध्यान रखे"* (फिलि0 2:3–4)। शारीरिकता के अनुसार जीवन बिताने पर हम

स्वार्थ–केन्द्रित होते हैं, स्वार्थ–पूर्ति तथा स्व–सम्मान के लिए जीते हैं, और दीनता का जीवन जीने तथा दूसरों को अपने से अधिक मान–सम्मान देने से दूर रहते हैं। परन्तु जैसे–जैसे, मसीह के साथ (अपने पुराने मनुष्यत्व के) सह–क्रूसित होने की आध्यात्मिक सच्चाई में विष्वास–विश्राम (आषा–भरोसा) करते हुए, **आत्मा** के चलाए जीवन व्यतीत करना सीखते हैं, वैसे–वैसे शरीर की अभिलाषाओं की गुलामी से छूटते जाते हैं और हमारे जीवन में इनका स्थान पवित्र आत्मा के फल लेने लगते हैं। अतः पौलुस ने फिलिप्पी के विष्वासियों को **मसीह में** उपलब्ध आध्यात्मिक आषिषों को अपनाते हुए जीवन व्यतीत करने के लिए प्रोत्साहित किया जिससे कि वे ईष्वरपरायणता (ईष्वरभक्ति) एवं एक–दूसरे के प्रति प्रेमी जीवन में बढ़ते रहें।

*"अपने में वही स्वभाव रखो जो मसीह यीषु में था, जिसने परमेष्वर के स्वरूप में होते हुए भी परमेष्वर के समान होने को अपने अधिकार में रखने की वस्तु न समझा। उसने अपने आप को ऐसा शून्य कर दिया कि दास का स्वरूप धारण कर मनुष्य की समानता में हो गया। इस प्रकार मनुष्य के रूप में प्रकट होकर स्वयं को दीन किया और यहां तक आज्ञाकारी रहा कि मृत्यु वरन् क्रूस की मृत्यु भी सह ली"* (फिलि0 2:5–8)। सच्ची ईष्वरीय सामर्थ्य के प्रति अजागरूक लोग पौलुस के इन शब्दों को पढ़कर मसीह जैसा बनने की कोषिष में लग जाते हैं। ऐसा करते समय असफलता के षिकार होते हैं, तब और अधिक प्रार्थना करते हैं कि परमेष्वर उन्हें और अधिक मसीह के समान बनाए। यह सब आत्मिक व धार्मिक जैसा लगता है, किन्तु यह विष्वास के सहारे आत्मिक जीवन जीना नहीं है; क्योंकि हमारे वास्ते मसीह द्वारा क्रूस पर पूर्ण किए गए विमोचन कार्य की सही समझ ही शारीरिकता पर विजयी होने का उपाय दर्षाती है। इसी से हमें आत्मा की अधीनता में जीवन व्यतीत करने की सामर्थ्य मिलती है, और इसी के परिणामस्वरूप हम मसीह के

स्वभाव की समानता में ढलते जाते हैं। मसीह द्वारा क्रूस पर सम्पन्न किए गये उद्धार–कार्य को विष्वासपूर्वक जानने, समझने एवं अपनाने के बजाय यदि हम अन्य किसी तरीके से उसके समान होने की कोषिष में लगे हैं तो विष्वास के आधार पर नहीं जी रहे हैं। ऐसा करने वाले लोग प्रभु परमेष्वर द्वारा पूर्ण किए गये कार्य पर विष्वास के सहारे नहीं जी रहे हैं (रोमि0 6:6 ,11 ; दू0 पत0 1:3)।

**मसीह** यीषु के **स्वभाव** का तात्पर्य है – मसीह जैसी मनोवृत्ति एवं मसीह जैसा विचार रखना (उसके जैसा होना)। मसीह के साथ अपनी पहचान के ज्ञान में, विष्वास में एवं अपनाने में हम जितना अधिक बढ़ते हैं, उतना ही अधिक शारीरिकता के बजाय **आत्मा** के चलाए चलते हैं और जितना अधिक हम आत्मा के चलाए चलेंगे, उतना ही अधिक (पवित्र) आत्मा द्वारा मसीह के स्वभाव में भरपूर किए जाएंगे। फलतः ख्रीष्त–समान मनोवृत्ति एवं विचारों को प्राप्त करेंगे अर्थात् उसके स्वभाव में ढलते जाएंगे। इस पृथ्वी पर मसीह का (देहधारी) जीवन–स्वभाव कैसा था – स्वार्थरहित, दीनतापूर्ण और मृत्यु तक आज्ञाकारी। बेषक, वह पिता परमेष्वर का सर्वसामर्थी एवं पूर्णतः पवित्र "पुत्र" था जिसे एक पापी मनुष्य की भांति सलीबी मौत मिली। इसके विपरीत हम पूर्णतः पापी हैं और किसी प्रकार की भलाई के लायक नहीं हैं। तब भी हम अपनी शारीरिकता में दूसरों के प्रति ऐसा आलोचनापूर्ण व्यवहार (न्याय) करते हैं जैसा कि स्वयं परमेष्वर हों। बहरहाल, जैसे–जैसे हम पवित्र आत्मा की अधीनता में जीवन जीना सीखते हैं, वैसे–वैसे हमारा जीवन ख्रीष्त–स्वभाव में परिवर्तित होता जाता है और तब हम (उसी अनुपात में) स्वयं को स्वार्थ के प्रति मृतक समझने की क्षमता पाते हैं और दूसरों की सेवा–सहायता के लिए उपलब्ध होने की क्षमता।

*"इस कारण परमेष्वर ने उसको अति महान् भी किया और उसको वह नाम प्रदान किया जो सब नामों में श्रेष्ठ है, कि यीषु के नाम पर प्रत्येक घुटना टिके, चाहे वह स्वर्ग में हो या पृथ्वी पर या पृथ्वी के नीचे, और परमेष्वर पिता की महिमा के लिए प्रत्येक जीभ अंगीकार करे कि यीषु मसीह ही प्रभु है"* (फिलि0 2:9–11)। पौलुस द्वारा प्रस्तुत विचार को समझना बहुत महत्वपूर्ण है। परमेष्वर–पुत्र यीषु मसीह, जो अनन्तकाल से परमेष्वर है, मनुष्य बना (अर्थात् देहधारी हुआ)। यद्यपि वह परमेष्वर था तथापि मनुष्यों द्वारा उसका तिरस्कार और इतना अधिक अपमान किया गया जितना कभी किसी भी मनुष्य का नहीं किया गया – यहां तक कि उसे सलीब पर चढ़ाकर मृत्यु–दंड दिया गया। इस प्रकार उसने अपने पिता परमेष्वर की इच्छा को पूर्ण किया। तत्पष्चात् पिता परमेष्वर ने उसे पुनः जीवित कर दिया, और उसे सब नामों से उच्च एक नया नाम प्रदान किया – उद्धारकर्ता, परमेष्वर, राजाओं का राजा और प्रभुओं का प्रभु।

यद्यपि उसके देहधारी होने पर उसका तिरस्कार किया गया और उसे बेहद अपमानित किया गया, लेकिन वह दिन भी आने वाला है जबकि आकाष, पाताल व पृथ्वी के समस्त सृजित प्राणी उसके समक्ष नतमस्तक होकर उसे ही सच्चा "प्रभु" स्वीकार करेंगे। लोग उसे अपना उद्धारकर्ता मानने से इन्कार कर सकते हैं, लेकिन अन्ततः सब मनुष्य यह मानेंगे कि वही "प्रभु" है (प्रका0 19:11–16)। इस प्रकार 'मृत्यु व पुनरुत्थान' का सिद्धान्त दिखाई देता है – यीषु मसीह महिमान्वित अवस्था से अत्यन्त अपमानित अवस्था (मृत्यु–दंड) में गया और तत्पष्चात् (पुनः जीवित) होकर महत्तर महिमा की अवस्था में (यूह0 12:24)। अतः जैसे किसी बीज पर 'मृत्यु व पुनरुत्थान' का सिद्धान्त लागू होता है और जैसे प्रभु यीषु मसीह के जीवन में यह सिद्धान्त सच रहा, वैसे हमारे जीवन में भी यही सिद्धान्त कार्य करता है।

## चार

*"इसलिए मेरे प्रियों, जिस प्रकार तुम सदैव आज्ञा पालन करते आए हो, न केवल मेरी उपस्थिति में परन्तु अब उससे भी अधिक मेरी अनुपस्थिति में डरते और कांपते हुए अपने उद्धार का काम पूरा करते जाओ, क्योंकि स्वयं परमेष्वर अपनी सुइच्छा के लिए तुम्हारी इच्छा और कार्यों को प्रोत्साहित करने के लिए तुम में सक्रिय है"* (फिलि0 2:12–13)। इससे पहले हमने मसीह यीषु के जीवन आदर्ष पर ध्यान दिया कि पिता परमेष्वर के साथ सुदृढ़ सहभागिता तथा उस पर अटल विष्वास (भरोसा) के कारण वह मृत्यु–सहन में भी आज्ञाकारी बना रहा। हमने यह भी देखा कि पिता परमेष्वर ने उसे सर्वोपरि महिमान्वित किया और उसे एक सर्वोच्च नाम प्रदान किया है। यद्यपि मनुष्यों द्वारा उसका तिरस्कार व अपमान किया गया, लेकिन अन्ततः सभी मनुष्य उसके समक्ष नतमस्तक होंगे और उसे ही प्रभु स्वीकार करेंगे। इस प्रकार, पौलुस के कहने का भावार्थ यह है कि जैसे पिता परमेष्वर के साथ मसीह की सुसंगति से आज्ञाकारिता उत्पन्न हुयी, उसी प्रकार विष्वासियों में भी होता है, क्योंकि हम उसकी संतान हैं और मसीह के साथ सह–उत्तराधिकारी। "अपने उद्धार का काम पूरा करते जाओ" – अर्थात् 'अपने उद्धार को जीवन–व्यवहार में प्रकट होने दो'। क्यों और कैसे? अगले पद में लिखा है – "क्योंकि स्वयं परमेष्वर अपनी सुइच्छा के लिए तुम्हारी इच्छा और कार्यों को प्रोत्साहित करने के लिए तुम में सक्रिय है"। (स्मरण रहे कि आज्ञाकारिता विष्वास का

फल है – रोमि0 1:5)। अपने उद्धार–प्राप्ति के समय हम आदम से निकाल कर मसीह में स्थापित कर दिए गये। उसी समय हमें पवित्र आत्मा का अन्तर्वास रूपी दान प्राप्त हुआ जो हमारे भीतर मसीह का जीवन–स्वभाव पुनरुत्पादित (निर्मित) करना प्रारम्भ किया (**अब मैं... नहीं, मसीह मुझमें जीवित**)। अतः पौलुस ने फिलिप्पी के विष्वासियों को उद्धार के अनुसार जीवन व्यतीत करने (अर्थात् उद्धार–प्राप्त जीवन प्रकटन) की सलाह दी; क्योंकि उनकी दैनिक परिस्थितियों द्वारा मसीह ही उनमें प्रभावकारी तौर पर सक्रिय था और परमेष्वर को पसन्द जीवन व्यतीत करने की इच्छा व शक्ति दे रहा था।

*"सब काम बिना कुड़कुड़ाए और निर्विवाद किया करो, जिस से तुम निर्दोष और भोले बनो तथा इस कुटिल और भ्रष्ट पीढ़ी के बीच परमेष्वर के निष्कलंक संतान बनकर संसार में ज्योति बनकर चमको। जीवन के वचन को दृढ़ता से थामे रहो जिस से मसीह के दिन मुझे इस बात पर गर्व हो कि न तो मेरी दौड़–धूप और न मेरा परिश्रम व्यर्थ गया"* (फिलि0 2:14–16)। इससे पहले फिलिप्पी के विष्वासियों को पौलुस ने यह समझाया कि उन्हें ईष्वरीय इच्छा के अनुसार जीवन बिताने के लिए समर्थ बनाने हेतु परमेष्वर उनके जीवन में कार्य कर रहा है। प्रभु परमेष्वर विष्वासियों के जीवन में अपनी इच्छा को कार्यान्वित करने के लिए सिर्फ सत्य का ही उपयोग नहीं करता बल्कि जीवन की दैनिक परिस्थितियों को भी इस्तेमाल करता हैः आपसी सम्बन्धों को, दोषारोपण एवं दुर्व्यवहार को, अर्थात् इस पतित संसार के दैनिक जीवन में घटित होने वाले हालात को। इसीलिए पौलुस इन पदों में यह सिखाता है कि "सब काम बिना कुड़कुड़ाए व निर्विवाद किया करो"। जैसे हम में है, वैसे ही फिलिप्पी के विष्वासियों में भी शारीरिकता थी। शारीरिकता के

अनुसार चलने पर प्रेमपूर्ण व दीनतापूर्ण व्यवहार के बजाय "कुड़कुड़ाना और विवाद होना" निष्चित था।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम इस "खोए हुये" जगत में जी रहे हैं, और यहां जब पवित्र आत्मा के चलाए जीवन व्यतीत करते हैं तो मसीह के एक प्रज्वलित दीपक की तरह प्रकाषमान होते (चमकते) हैं। यदि हम शारीरिकता के अनुसार चलेंगे तो जीवन की दैनिक परिस्थितियों के प्रति हमारी प्रतिक्रिया शारीरिक व पापी होगी। तब हम मसीह का जीवन प्रकाषित करने के बजाय इस अंधकार भरी दुनिया में और अधिक अंधकार ही फैलाएंगे (प0 यूह0 2:8–11)। पौलुस कहता है कि हम जिस संसार में रह रहे हैं, वह "कुटिल व भ्रष्ट" है। यह दुनिया बुराई एवं पाप को सही कहती है; और सच्चाई एवं शुद्धता को गलत व मूर्खता मानती है। रोमियों की पत्री के दूसरे अध्याय के पन्द्रहवें पद के अनुसार प्रत्येक मनुष्य अपनी अन्तरात्मा में सही और गलत को जानता है। बहरहाल, जैसे–जैसे प्रभु परमेष्वर हमें मसीह के स्वभाव में ढालता जाता है, वैसे–वैसे हम उस (ईष्वरीय) सत्य को प्रकाषित करने में उन्नति करते जाते हैं जिसे यह संसार इनकार करता है (दू0 कुरि0 2:14–15)।

*"यद्यपि मैं तुम्हारे विष्वास के बलिदान और उपासना पर अर्घ के समान उंडेला जाता हूं, फिर भी मैं आनन्दित हूं और तुम सब के साथ आनन्द मनाता हूं। मैं निवेदन करता हूं कि तुम भी उसी प्रकार आनन्दित रहो और मेरे साथ आनन्द मनाओ"* (फिलि0 2:17–18)। यहां यह भी स्मरण रखना जरूरी है कि पौलुस को क्यों जेल में डाला गया था और उसके विरोधी उसे मृत्यु–दंड देने की

मांग क्यों कर रहे थे? क्या उसने कोई बुरा काम (अपराध) किया था? नहीं। उसे तो सार्वजनिक रूप से परमेष्वर के वचन का प्रचार करने के कारण जेल में डाल दिया गया था। उसने अपनी प्रत्येक पत्री में विष्वासियों को सत्य के अनुसार आचरण करते हुए, ख्रीष्त–जीवन–प्रकटन के लिए प्रोत्साहित किया (गला0 4:19)। इस सम्बन्ध में उसकी इच्छा इतनी प्रबल थी कि वह सुसमाचार–प्रचार हेतु मृत्यु–दंड भी सहने के लिए तत्पर था। काष कि मसीह में हम भी इतने लवलीन हो जाएं कि सुसमाचार हमारे लिए भी इतना अधिक महत्वपूर्ण हो जाए।

*"प्रभु यीषु में मुझे आषा है कि मैं शीघ्र ही तीमुथियुस को तुम्हारे पास भेजूंगा जिससे तुम्हारे विषय में सुनकर मुझे प्रसन्नता हो। मेरे पास उसके सदृष्य कोई अन्य ऐसा व्यक्ति नहीं जिसे शुद्ध मन से तुम्हारे सम्बन्ध में चिन्ता हो। क्योंकि सब अपने स्वार्थ की खोज में रहते हैं न कि मसीह यीषु की। परन्तु तुम्हें उसकी योग्यता का प्रमाण मिल चुका है कि सुसमाचार प्रचार में उसने मेरा हाथ ऐसे बंटाया है जैसे पुत्र पिता का। इसलिए मैं आषा करता हूं कि अपने सम्बन्ध में ज्यों ही मुझे कुछ भी मालूम हो जाएगा, मैं उसे तुम्हारे पास भेज दूंगा"* (फिलि0 2:19–23)। इन शब्दों को लिपिबद्ध करते समय पौलुस रोम की जेल में कैद था। यद्यपि उस नगर में मसीहियों की एक मंडली थी, तथापि तीमुथियुस में ही, आत्मा की अधीनता में जीवन व्यतीत करते हुए, दूसरों की आवष्यकताओं के प्रति सच्ची लगन थी। वह अपने स्वार्थ–सिद्धि के लिए जीने की अहं–केन्द्रित जीवन–शैली से मुक्त था। इसी तरह, जैसे–जैसे पवित्र आत्मा हमें मसीह के स्वभाव की समानता में परिवर्तित करता जाता है, वैसे–वैसे हम भी आत्मा के अनुसार जीवन आचरण करने में

उन्नति करते हैं, और तब स्वार्थ–सिद्धि के बजाय "मसीह में प्राप्त स्वर्गिक आषिषों" के आकांक्षी होते जाते हैं।

*"और प्रभु में मुझे भरोसा है कि मैं स्वयं भी शीघ्र आऊंगा। फिर भी मुझे यह आवष्यक जान पड़ा कि अपने भाई व सहकर्मी, संगी योद्धा तथा तुम्हारे संदेषवाहक और आवष्यक बातों में मेरी सेवा करने वाले अर्थात् इपफ्रुदीतुस को तुम्हारे पास भेजूं, क्योंकि तुमने उसकी बीमारी का समाचार सुन लिया था और वह तुम से मिलने के लिए अत्यन्त व्याकुल व लालायित रहता था। वास्तव में, वह बीमार तो था, यहां तक कि मरने पर था। परन्तु उस पर परमेष्वर की दया हुयी, और न केवल उस पर वरन् मुझ पर भी कि मुझे शोक पर शोक न हो। इस कारण मैं उसे भेजने को और भी उत्सुक हुआ जिससे कि उसे फिर देखकर तुम आनन्दित हो जाओ और मेरी चिन्ता भी कम हो जाए। अतः प्रभु में उसका बड़े आनन्द से स्वागत करो, ऐसे लोगों का अधिक आदर किया करो, क्योंकि मसीह के कार्य के लिए वह अपने प्राण को जोखिम में डालकर मरने पर था कि मेरे प्रति तुम्हारी सेवा में जो घटी रह गई थी उसे पूर्ण करे"* (फिलि0 2:24–30)। चूंकि पौलुस रोम की जेल में कैद था इसलिए फिलिप्पी की मंडली ने इपफ्रुदीतुस को अपने एक प्रतिनिधि के रूप में उसकी सेवा–सहायता करने के लिए उसके पास भेज रखा था। वहां जाते समय फिलिप्पियों की मंडली की ओर से पौलुस के लिए इपफ्रुदीतुस एक उपहार भी ले गया था। लेकिन रोम में रहते हुए इपफ्रुदीतुस बहुत बीमार हो गया था, यहां तक कि मरने पर था। उसकी बीमारी के विषय में सुनकर फिलिप्पी की मंडली के लोग बहुत चिंतित थे। जब वह स्वस्थ हो गया तो उसे यह चिंता सताने लगी थी कि फिलिप्पी में उसकी मंडली के लोग अब भी उसकी

बीमारी के बारे में शोकित व दुखित हैं (उस जमाने में आजकल की तरह मोबाइल फोन नहीं थे)। अतएव पौलुस ने यह सोचा कि तीमुथियुस और इपफ्रुदीतुस दोनों को फिलिप्पी भेजना बेहतर होगा। वहां जाकर तीमुथियुस उस मंडली में आत्मिक सेवा–सहायता प्रदान कर सकेगा और फिलिप्पी के विष्वासीगण इपफ्रुदीतुस को देखकर हर्षित होंगे कि वह सचमुच अब स्वस्थ हो चुका है।

आत्मा की अधीनता व आत्मा के फलों के अनुसार कलीसिया–संचालन का यह एक सुन्दर उदाहरण है। यहां फिलिप्पी की मंडली की पौलुस के प्रति प्रेमपूर्ण चिन्ता तथा उस प्रेम का सक्रिय (व्यवहारिक) प्रकटीकरण दिखाई देता है। इपफ्रुदीतुस की बीमारी के प्रति भी उनकी प्रेमपूर्ण चिन्ता सुस्पष्ट दिखाई देती है। इसके अलावा फिलिप्पयों की मंडली के प्रति इपफ्रुदीतुस की प्रेमपूर्ण चिन्ता भी सुस्पष्ट है। इतना ही नहीं, उस मंडली के प्रति पौलुस की प्रेमपूर्ण चिन्ता भी यहां स्पष्ट है। उस मंडली की सेवा–सहायता हेतु वह अपने दो साथियों को भेजने को तैयार था। यदि यह सब लोग शारीरिकता के अधीन जीवन–आचरण कर रहे होते तो सिर्फ अपने–अपने स्वार्थपूर्ति की ही चिन्ता में लगे रहते और एक–दूसरे के जीवन में सेवा–सहायता नहीं कर पाते। इस प्रकार, यदि हमारी कलीसियाओं में परमेष्वर के लोगों की आवष्यकताओं के प्रति इसी प्रकार की प्रेमपूर्ण चिन्ता नहीं दिखायी देती, तो इससे यह प्रकट होता है कि हम शारीरिकता और स्वार्थ–सिद्धि में लगे हैं।

## पांच

*"अतः हे मेरे भाइयों, प्रभु में आनन्दित रहो। वे ही बातें तुम को बारम्बार लिखने में मुझे तो कुछ कष्ट नहीं होता, क्योंकि इसमें तुम्हारी सुरक्षा है"* (फिलि0 3:1)। रोचक है कि इन शब्दों का लेखक (पौलुस) भयावह परिस्थितियों का सामना कर रहा था। पौलुस को परमेष्वर के अनुग्रह तथा मसीह में प्राप्त आध्यात्मिक आषिषों का अद्‌भुत ज्ञान था, और यही आध्यात्मिक (ईष्वरीय) ज्ञान उसके हृदय को प्रभावित, नियंत्रित, सुस्थिर व शान्त किए रहा। जब कठिन परिस्थितियों के आंधी–तूफान उसकी अन्तरात्मा की सुस्थिरता व शांति बिगाड़ने का प्रयास करते थे, तब मसीह के साथ उसकी पहचान (एकता व सहभागिता) उसके हृदय (मन, इच्छा, भावना) को पतवार समान नियंत्रित, सुस्थिर व शांत बनाए रखती थी। हम सब के जीवन में कभी न कभी कठिन परिस्थितियां आती हैं – दुःख, बीमारी, दुर्घटना, आर्थिक कठिनाई या फिर परस्पर सम्बन्धों का संघर्ष। कभी–कभी तो एक ही समय अनेक कठिनाईयां भी आ जाती हैं। बहरहाल, यदि पौलुस की भांति हम भी, आत्मा के चलाए जीवन व्यतीत करते हैं, तो हमारा मन मसीह पर केन्द्रित होगा और इहलौकिक जीवन की चिंताएं और बोझ हमें अस्थिर एवं अषांत नहीं कर सकेंगे। इसके विपरीत यदि हम शरीर के अनुसार जीवन बिताते हैं तब मसीह पर दृष्टि लगाए रहने के बजाए अपनी परिस्थितियों पर ही दृष्टि लगाए रहते हैं। फलतः अस्थिरता और अषांति की ओर लुढ़कते हैं (रोमि0 8:35–39, इफि0 1:3, दू0 कुरि0 4:16–19)।

*"अतः हे मेरे भाइयों, प्रभु में आनन्दित रहो। वे ही बातें तुमको बारम्बार लिखने में मुझे तो कुछ कष्ट नहीं होता, क्योंकि इस में तुम्हारी सुरक्षा है। कुत्तों, कुकर्मियों और झूठे खतने से सावधान रहो"* (फिलि0 3:1–2)। पौलुस, फिलिप्पी के विष्वासियों के भटकाए जाने के प्रति चिंतित था। उसने इस सच्चाई का स्मरण दिलाया कि उद्धार प्रदान करने तथा पवित्र बनाने के लिए मसीह यीषु द्वारा सम्पन्न किया गया कार्य, एक पूर्णरूपेण पूरा किया जा चुका विमोचन कार्य है; और हमारे आनन्द का आधार–स्रोत, हमारे बदले मसीह द्वारा पूर्ण किया जा चुका यह उद्धार–कार्य मात्र ही होना चाहिए। इस प्रकार पौलुस ने उन्हें ऐसे लोगों से सतर्क रहने की चेतावनी दी जो परमेष्वर से आषिष और स्वीकार्यता पाने के लिए मसीह (पर आश्रित रहने) के बजाय अपने कर्मों पर आषा–भरोसा रखने की षिक्षा देते हैं (गला0 1:6–9)। रोचक है कि ऐसे (यहूदीवादी) झूठे षिक्षकों को पौलुस ने "कुत्तों" कहा है। क्यों? क्योंकि उन दिनों के यहूदीवादी अगुवे ग़ैरयहूदियों को "ग़ैरयहूदी कुत्ते" कहा करते थे। इसके बाद, पौलुस ने "कुकर्मियों और झूठे ख़तने से सावधान" रहने की बात लिखी है, अर्थात् धर्म का नकली रूप–रंग रखने वालों से भी सावधान रहने की बात (प्रेरि0 20:28–31; प0 पत0 2:1–3; यषा0 57:11)।

*"सच्चा ख़तना वाले तो हम ही हैं, जो परमेष्वर के आत्मा में उपासना करते हैं, मसीह यीषु पर गर्व करते हैं और शरीर पर भरोसा नहीं रखते"* (फिलि0 3:3)। पवित्र बाइबॅल के पुराना नियम के अनुसार यहूदियों के लिए ख़तना कराना इस बात का प्रमाण था कि वे परमेष्वर की प्रजा अर्थात् परमेष्वर के लोग हैं। परन्तु पौलुस यहां यह लिखता है कि "सच्चा ख़तना वाले तो हम ही हैं" –

अर्थात आत्मिक तौर पर ख़तना किए गये लोग (कुलु0 2:11)। रोमियों की पत्री के छठवें अध्याय के छठवें पद में यह लिखा है कि "हमारा पुराना मनुष्यत्व" मसीह के साथ "क्रूस पर चढ़ाया" जा चुका है। अतः जिस वक्त हम मसीह पर यीषु पर विष्वास करते हैं उसी समय, पाप का वह अधिकार हमारे जीवन से (ख़तना स्वरूप) काट दिया जाता है, जो हमारे शरीर द्वारा हमारे ऊपर अपना नियंत्रण बनाए रखता था। इस प्रकार हम पर उसका अधिकार नहीं रह जाता।

पौलुस यह लिखता है कि "सच्चा ख़तना वाले हम ही हैं जो परमेष्वर के आत्मा में उपासना करते हैं"। पुराना नियम शास्त्र के समय परमेष्वर के साथ इस्राएलियों की संगति व्यवस्था–पालन पर आधारित थी। वर्तमान समय में परमेष्वर के समक्ष हमारी स्वीकार्यता एवं उसके साथ हमारी संगति–सहभागिता का आधार 'परमेष्वर का अनुग्रह' है – अर्थात् क्रूस पर मसीह यीषु द्वारा पूर्ण किया गया ईष्वरीय कार्य। पुराना नियम काल में जो विषिष्ट आषिष उपलब्ध नहीं थी, वह नया नियम काल के विष्वासियों को उपलब्ध है – अर्थात् मसीही विष्वासी के जीवन में पवित्र आत्मा का स्थायी निवास। पवित्र आत्मा ने ही हमें "मसीह में" स्थापित करके हमारे जीवन को मसीह के स्वभाव में ढालने की प्रक्रिया प्रारम्भ की है। इस प्रकार हममें परमेष्वर की आराधना का स्रोत आन्तरिक है अर्थात् हमारी अन्तरात्मा में वास करने वाला ख्रीष्त–जीवन। इसके विपरीत (पुराना नियम के अनुसार चलने वाले) इस्राएलियों द्वारा ईष्वर–आराधना व्यवस्था के पालन पर आधारित थी – अर्थात् बाह्य। पौलुस कहता है कि हम "षरीर पर भरोसा नहीं रखते"। व्यवस्था के अधीन जीने वाले व्यक्ति को व्यवस्था–पालन के लिए

अपनी इच्छा और शक्ति पर आश्रित होना पड़ता है। इस सम्बन्ध में उस व्यक्ति को व्यवस्था से कोई शक्ति या सहारा नहीं मिल सकता। इसीलिए जब कोई व्यक्ति व्यवस्था का आंषिक पालन करने में सफल होता है तो उसमें स्वधर्मिता, अहंम्मान या अपने ऊपर यह घमंड होने लगता है कि मैं तो औरों से ज्यादा धर्मी हूं। किन्तु जब ऐसा व्यक्ति व्यवस्था के किसी नियम का पालन करने से चूक जाता है, तब उसमें दोष–भावना उमड़ने लगती है। इस प्रकार, व्यवस्था के अधीन जीने वाला व्यक्ति अपने आपे पर ही भरोसा करता है – व्यवस्था उसकी मदद नहीं कर सकती है। इसके विपरीत, मसीह के विष्वासियों का उद्धार एवं परमेष्वर के समक्ष स्वीकार्यता केवल 'यीषु मसीह द्वारा सम्पन्न उद्धार–कार्य पर आधारित' है। इस प्रसंग में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम स्वयं अपनी शक्ति से अपने आपको पाप से छुटकारा देने, या परमेष्वर को प्रसन्न व संतुष्ट करने में पूर्णतः अयोग्य, असमर्थ, असहाय एवं लाचार हैं। इसीलिए "मसीह में" आषा–भरोसा रखने वाला विष्वासीजन अपने "षरीर पर" गर्व या भरोसा नहीं करता।

*"मैं तो शरीर पर भी भरोसा रख सकता था। यदि किसी को शरीर पर भरोसा रखने का विचार है तो मुझे उस से भी कहीं अधिक हो सकता है। आठवें दिन मेरा ख़तना हुआ। इस्राएल जाति के बिन्यामीन गोत्र का हूं। इब्रानियों का इब्रानी, व्यवस्था–पालन की दृष्टि से फरीसी हूं। उत्साह की दृष्टि से मैं कलीसिया को सतानेवाला और व्यवस्था की धार्मिकता के अनुसार निर्दोष था"* (फिलि0 3:4–6)। यहां अपने विषय में पौलुस ने जितनी बातें लिखी हैं, उनकी वजह से वह एक उच्च, आदरणीय एवं सम्माननीय यहूदी का दर्जा पाए था। कहने का मतलब, मनुष्य की दृष्टि में महान व

प्रतिष्ठित मानी जाने वाली चीजें उसे मिल चुकी थीं। अपने नाम, काम व धर्म पर गर्व करने वाले यहूदियों में पौलुस का प्रथम स्थान था। लेकिन आगे के पद में ध्यान दें कि अपनी इन सारी उपलब्धियों के बारे में संत पौलुस क्या लिखता है।

*"परन्तु जो बातें मेरे लाभ की थीं, उन्हीं को मैंने मसीह के कारण हानि समझ लिया है। इस से भी बढ़कर मैं अपने प्रभु यीषु मसीह के ज्ञान की श्रेष्ठता के कारण सब बातों को तुच्छ समझता हूं। जिसके कारण मैंने सब वस्तुओं की हानि उठाई है और उन्हें कूड़ा समझता हूं जिस से मैं मसीह को प्राप्त करूं"* (फिलि0 3:7–8)। जब परमेष्वर की आत्मा द्वारा सत्य के प्रति पौलुस की आंतरिक आंख खोली गयी, तब उसे यह समझ प्राप्त हुयी कि इनमें से कोई भी मानुषिक उपलब्धि पिता परमेष्वर के समक्ष ग्रहणयोग्य नहीं बना सकती, बल्कि ये सांसारिक बातें रुकावट ही बन सकती हैं। तब वह उन सब बातों को परमेष्वर की संगति की गहराई के मार्ग में हानिप्रद समझने लगा, जिन्हें प्रभु को पाने से पूर्व वह लाभकारी उपलब्धि मानता था। इतना ही नहीं, पौलुस यह भी कहता है कि जो कुछ मसीह की ओर से या मसीह के ज्ञान से सम्बद्ध नहीं है, वह सब "कूड़ा" समान है। प्रभु यीषु मसीह के विष्वासी होने के कारण हमें भी अपने जीवन को जांचना–परखना है। हम अपने जीवन में किन चीजों को प्राथमिक, प्रमुख व महत्वपूर्ण मानते हैं? क्या धन–सम्पत्ति, पद–प्रतिष्ठा, षिक्षा–स्तर को? क्या हमारे हृदय की प्रमुख लालसा मसीह है? यदि हमारे जीवन का प्रमुख लक्ष्य मसीह नहीं है, तो हम शारीरिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं – सिर्फ अपनी इच्छापूर्ति व स्वार्थपूर्ति के लिए।

*"और मैं मसीह में पाया जाऊँ। यह अपनी उस धार्मिकता से नहीं जो व्यवस्था से उत्पन्न होती है, परन्तु उस धार्मिकता से जो मसीह पर विष्वास करने से मिलती है, अर्थात् उस धार्मिकता से जो केवल विष्वास के आधार पर परमेष्वर से प्राप्त होती है, जिससे कि मैं उसको और उसके जी उठने की सामर्थ्य को तथा उसके साथ दुखों में सहभागी होने के मर्म को जानूं, कि उसकी मृत्यु की समानता को प्राप्त करूं, कि मैं भी मृतकों के पुनरुत्थान को प्राप्त कर सकूं"* (फिलि0 3:9–11)। झूठे षिक्षक यह षिक्षा दे रहे थे कि परमेष्वर के समक्ष धर्मी ठहराए जाने के लिए व्यवस्था–पालन करना जरूरी है अर्थात् व्यवस्था–पालन हेतु मानुषिक क्षमता पर भरोसा करना। इसके विपरीत, पौलुस ने "मसीह में" होने से उपलब्ध उस ईष्वर–प्रदत्त धार्मिकता पर भरोसा किया जो मनुष्य के कर्म द्वारा नहीं बल्कि मसीह पर विष्वास द्वारा मिलती है। मसीह के साथ सह–क्रूसित होने की आध्यात्मिक सच्चाई को विष्वास द्वारा अपनाते हुए उसकी मृत्यु के साथ अपनी समानता की पहचान एवं उसके ज्ञान में हम जितना अधिक बढ़ते जाते हैं, उतना ही अधिक अपने दैनिक जीवन में उसके पुनरुत्थान की सामर्थ्य का अनुभव करते हुए, शारीरिकता के शासन व नियंत्रण से छूटकर, मसीह के स्वभाव में विकसित होते जाते हैं (रोमि0 6:4–6,11)। जब हम मसीह द्वारा क्रूस पर पूर्ण किए गये उद्धार–कार्य के अलावा अपने किसी रीति–विधि या धर्म–कर्म पर भरोसा करने लगते हैं तो मसीह के स्वभाव में बदलने की प्रक्रिया में बाधा व रुकावट आ जाती है। ग्यारहवें पद में पौलुस यह कहता है कि वह मसीह के साथ और गहरी संगति का आकांक्षी है तथा उसकी मृत्यु की समानता (अर्थात् अपने स्वार्थ, अहंकार या पाप–स्वभाव की मृत्यु) की पहचान में

बढ़ने को आतुर है ताकि **उसके** पुनरुत्थान की सामर्थ्य का अनुभव करते हुए, इस पृथ्वी पर पुनरुत्थान–प्राप्त स्वर्गिक जीवन जैसी जिन्दगी जी सके।

*"यह नहीं कि मैं प्राप्त कर चुका हूं या सिद्ध हो चुका हूं, पर उस उद्देष्य की पूर्ति के लिए अग्रसर होता जाता हूं, जिसके लिए मसीह यीषु ने मुझे पकड़ा था। हे भाइयों, मेरी धारणा यह नहीं कि मैं प्राप्त कर चुका हूं, परन्तु यह एक काम करता हूं, कि जो बातें पीछे रह गयी हैं, उन्हें भूल कर आगे की बातों की ओर बढ़ता हुआ, लक्ष्य की ओर दौड़ा जाता हूं कि वह इनाम पाऊं जिसके लिए परमेष्वर ने मुझे मसीह यीषु में ऊपर बुलाया है"* (फिलि0 3:12–14)। यद्यपि पौलुस मसीह के गहरे ज्ञान तथा उसके स्वभाव में ढलते जाने के अलावा अन्य किसी चीज का आकांक्षी नहीं था, तथापि वह यह नहीं कह रहा था कि वह अपने इस लक्ष्य को पूर्णतः प्राप्त कर चुका है। बल्कि, वह जिन चीजों पर पहले अहंकार व आषा–भरोसा करता था उन्हें त्याग कर सिर्फ मसीह द्वारा पूर्ण किए गये उद्धार–कार्य पर ही आषा–भरोसा करने लगा था। वह तो अब विष्वास के सहारे मसीह के स्वभाव में ढलते जाने के लक्ष्य की ओर अग्रसर था, जो कि परमेष्वर की ओर से सर्वोच्च बुलाहट है।

## छः

*"हे भाइयों, मेरी धारणा यह नहीं कि मैं प्राप्त कर चुका हूं, परन्तु यह एक काम करता हूं, कि जो बातें पीछे रह गई हैं, उन्हें भूल कर आगे की बातों की ओर बढ़ता हुआ, लक्ष्य की ओर दौड़ा जाता हूं कि वह इनाम पाऊं जिसके लिए परमेष्वर ने मुझे मसीह यीषु में ऊपर बुलाया है। अतः हम में से जितने परिपक्व हैं यही विचार रखें, और यदि किसी बात में तुम्हारा मतभेद हो तो परमेष्वर उसे भी तुम पर प्रकट कर देगा। जिस स्तर तक हम पहुंच चुके हैं, उसी के अनुसार आचरण करें"* (फिलि0 3:13–16)। पौलुस ने यह दावा नहीं किया कि वह निष्पाप सिद्धता का जीवन जी रहा है। वह अपने पुराने जीवन की शारीरिक उपलब्धियों पर मन लगाने के बजाय मसीह के स्वभाव में ढलते हुए आत्मिक उन्नति की ओर अग्रसर था। हममें से प्रत्येक विष्वासी को यही स्वतंत्रता प्राप्त है। पवित्र आत्मा हमें दिनों दिन शारीरिकता में कम तथा अधिकाधिक आत्मा के चलाए जीवन बिताना सिखा रहा है। इस प्रकार आध्यात्मिक परिपक्वता रूपी प्रगति–पथ पर बढ़ते हुए हमारा ध्यान–मन पुराने जीवन की बातों के बजाय मसीह की महत्ता पर ज्यादा केन्द्रित होता है। चौदहवें पद के अनुसार पौलुस का ध्यान–मन उसके "लक्ष्य" अर्थात् "मसीह यीषु में" स्वर्गिक (सर्वोच्च) बुलाहट की ओर लगा रहा।

पौलुस आगे लिखता है कि "सिद्ध" अर्थात् आध्यात्मिक तौर पर "परिपक्व" लोगों में 'मसीह के साथ अपनी पहचान' को अपनाते हुए यही मनोवृत्ति पायी जाती है और उनकी दृष्टि भी इसी

(स्वर्गिक) दिषा में केन्द्रित होती है। सत्य की समझ में सब लोग एक समान नहीं होते। अतः पौलुस कहता है कि यदि कोई मसीही विष्वासी अपनी आत्मिक समझ में इतनी उन्नति नहीं किया है कि इन बातों को समझ सके, तो समय आने पर प्रभु परमेष्वर उसे इन बातों की समझ प्रदान करेगा। 'मसीह के साथ हमारी आत्मिक एकता व पहचान' सम्बन्धी सच्चाईयों को समझने के लिए केवल प्रभु परमेष्वर ही हमारे मन को खोल (अर्थात् ज्ञान–प्रकाष प्रदान कर) सकता है। हमारा दायित्व यह है कि जितनी सच्चाईयां हम पर प्रकट की गयी हैं, उन सच्चाईयों पर चलें। जिस सच्चाई के लिए हमारा मन तैयार किया जा चुका है उस सच्चाई में (समय पर) पवित्र आत्मा द्वारा हमारी अगुवाई किए जाने पर हमें आषा–भरोसा रखना चाहिए। किसी और की तरह नहीं होने पर हमें निराष नहीं होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, परमेष्वर के वचन के षिक्षकों व आत्मिक अगुवों को इस बात के प्रति खबरदार रहना चाहिए कि जिनके मध्य वे सेवा कर रहे हैं, उन लोगों पर उस सत्य के अनुसार आचरण करने के लिए दबाव न डाला जाए, जिसके लिए अभी वे तैयार नहीं हैं या उनका मन तैयार नहीं किया गया है। यह कार्य पवित्र आत्मा पर छोड़ देना है कि वह अपने समयानुसार उनके जीवन में अपना काम करे। इस प्रसंग में प्रभु के एक दास **विलियम केली** के इन शब्दों को स्मरण रखना सहायक होगा : "हमें अपने आषा–भरोसा को उस पवित्र आत्मा की अधीनता में थामे रहना है जो सभी विष्वासियों की भलाई का इच्छुक है। जो जहां हैं, उन्हें वहीं रहने दें; और जिस क्षण तक परमेष्वर उन पर अपनी इच्छा प्रकट नहीं करता, उस क्षण तक उन्हें इधर–उधर करने की चिन्ता न करें"।

*"भाइयों, तुम सब मिलकर मेरा अनुकरण करो, और उन्हें ध्यान से देखो जो इस रीति से चलते हैं जिसका नमूना तुम हम में देखते हो; क्योंकि मैं तुम से पहिले अनेक बार कह चुका हूं और अब भी रो–रोकर कहता हूं कि ऐसे बहुत से हैं जो अपने आचरण से मसीह के क्रूस के शत्रु हैं। उनका अन्त विनाष है, उनका परमेष्वर पेट है, वे अपनी निर्लज्जता की बातों पर गर्व करते हैं और सांसारिक वस्तुओं पर मन लगाए रहते हैं"* (फिलि0 3:17–19)। पौलुस ने क्रूस पर मसीह यीषु द्वारा पूर्ण किए गये उद्धार–कार्य तथा उसके साथ अपनी पहचान पर भरोसा एवं विष्वास–विश्राम किया। अतः फिलिप्पी के विष्वासियों को भी इसी मनोवृत्ति एवं दृष्टिकोण में जीवन व्यतीत करने के लिए प्रोत्साहित करता रहा। क्योंकि बहुत से लोग 'क्रूस पर पूर्ण किए जा चुके ईष्वरीय उद्धार–कार्य पर भरोसा करने' के महत्व को पहचाने बगैर वचन के प्रचार में लगे थे और इस प्रकार "मसीह के क्रूस के शत्रु" जैसा आचरण कर रहे थे। पौलुस ने कहा कि ऐसे लोगों का "अन्त विनाष" है (दू0 पत0 2:1)। झूठी एवं भ्रामक षिक्षा सदैव विनाष की ओर ही ले जाती है। यह विष्वास को नष्ट करती है।

बाइबॅल–सम्मत विष्वास सदैव सत्य पर केन्द्रित व आधारित होता है। सत्य पर नहीं चलना, अविष्वास में चलना है; और अविष्वास में चलने का मतलब 'मसीह द्वारा सम्पन्न' कार्य की अवहेलना करना है। कई लोग ऐसे होते हैं जिनका "पेट (क्षुधा) ही उनका ईष्वर" होता है। ऐसे लोग पूर्णतः शारीरिक अभिलाषाओं के नियंत्रण में ही जिंदगी बिताते हैं। अपनी स्वार्थ–केन्द्रित व शारीरिक अभिलाषाओं की पूर्ति करना ही ऐसे लोगों का मजहब (धर्म–कर्म, देवता) है। ऐसे लोग सिर्फ अपने स्वार्थ–केन्द्रित शारीरिकता के अभिलाषा रूपी देवता के ही पुजारी होते हैं। अतः पौलुस कहता है

कि ऐसे लोग "अपनी निर्लज्जता... पर गर्व" करते हैं। यह सब हमारे शारीरिक स्वभाव (पुराने, पापी मनुष्यत्व) की भ्रष्टता व धोखेबाजी को दर्षाता है। शारीरिकता तो निर्लज्जता को महिमान्वित करती है, और जो वास्तव में महिमावान (आदरणीय) है उसे तुच्छ समझती है। इसीलिए पौलुस यह कहता है कि ऐसे स्वार्थी (शारीरिक) लोग मसीह पर मन लगाने के बजाय उन इहलौकिक बातों, वस्तुओं एवं आदर–मान पर मन लगाते हैं जिन्हें दुनिया के लोग महान उपलब्धि समझते हैं।

*"परन्तु हमारी नागरिकता स्वर्ग की है, जहां से हम उद्धारकर्ता प्रभु यीषु मसीह के आगमन की प्रतीक्षा उत्सुकता से कर रहे हैं। वह अपनी शक्ति के उस प्रभाव के अनुसार जिसके द्वारा वह सब वस्तुओं को अपने वष में कर सकता है, हमारी दीन–हीन देह का रूप बदल कर, अपनी महिमामय देह के अनुरूप बना देगा"* (फिलि0 3:20–21)। यहां पौलुस ने, 'मसीह द्वारा पूर्ण किए गये ईष्वरीय कार्य पर आषा–भरोसा व विष्वास–विश्राम करते हुए' प्रभु की ओर ही दृष्टि लगाए रहने का अन्य कारण भी बताया है। केवल मसीह यीषु ने ही हमें उद्धार एवं पवित्रता प्रदान की है, और केवल वही हमें महिमा प्रदान करेगा। पाप से हमारा उद्धार किसी मानवीय इच्छा या कार्य–योजना के द्वारा नहीं हुआ है। हमारे पवित्रीकरण की प्रक्रिया भी इसी प्रकार सम्पन्न होगी (कुलु0 2:6)। हमारी देह का स्वर्गिक देह में रूपान्तरण भी परमेष्वर की इच्छा व कार्य द्वारा ही होगा, अर्थात् जिस सामर्थी इच्छा से वह सब कुछ अपनी अधीनता में करता है। विष्वासी का जीवन 'मसीह में' स्थापित किया जा चुका है, जो "परमेष्वर की दाहिनी ओर विराजमान" है; और इस प्रकार हमारी शाष्वत् "नागरिकता स्वर्ग की" है (यूह0 14:1–3; कुलु0 3:1; प0 थिस्स0 4:16–17, फिलि0 3:20)।

*"इसलिए हे मेरे प्रिय भाइयों, तुम जो मेरे आनन्द और मुकुट हो, तुम्हें देखने को मेरा जी तरसता है। हे प्रियों, प्रभु में इसी प्रकार स्थिर रहो"* (फिलि0 4:1)। यहां पौलुस ने फिलिप्पी के विष्वासियों को "मसीह में" प्राप्त आध्यात्मिक अधिकार में आषा–भरोसा एवं विष्वास–विश्राम रखने के लिए तथा उसके साथ अपनी पहचान रूपी आध्यात्मिक सच्चाई में बढ़ते रहने के लिए प्रोत्साहित किया है। चूंकि हमारे उद्धार, पवित्रीकरण एवं महिमान्वित होने का एकमात्र आधार मसीह यीषु द्वारा क्रूस पर सम्पन्न किया गया ईष्वरीय कार्य ही है, इसलिए हमारी भूमिका यह है कि इस (मसीह द्वारा पूर्ण किए गये) ईष्वरीय–कार्य पर विष्वास के सहारे बने (स्थिर व अटल) रहें और इस कार्य की उपेक्षा करने वाले किसी धोखे में न फंसे।

*"मैं यूओदिया और सन्तुखे दोनों से अनुरोध करता हूं कि वे प्रभु में एक मन रहें। हे मेरे सच्चे सहकर्मी, मैं तुझ से भी निवेदन करता हूं कि तुम इन महिलाओं की सहायता कर जिन्होंने मेरे साथ और क्लेमेन्स तथा मेरे अन्य सहकर्मियों सहित जिनके नाम जीवन की पुस्तक में लिखे हैं, सुसमाचार के लिए संघर्ष किया है"* (फिलि0 4:2–3)। प्रभु यीषु मसीह द्वारा पूर्ण किए गए कार्य एवं उससे प्राप्त अद्भुत आषा के आधार पर, पौलुस ने इन दोनों महिलाओं को एकता में रहने के लिए तथा मंडली के अन्य लोगों को उनकी इस एकता में मदद करने के लिए प्रोत्साहित किया। इन दोनों महिलाओं ने सुसमाचार सेवा में पौलुस एवं उसके सहयोगियों की मदद की थी, लेकिन इस पत्री के लिखते समय उन दोनों के आपसी सम्बन्धों में तनाव था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह दोनों महिलायें मसीह में प्राप्त अद्भुत आषिष–अधिकार को तथा **उसके** सहकर्मी होने के विषेषाधिकार को भूल कर आपसी सम्बन्धों की छोटी–छोटी बातों में

उलझ गई थीं। हमारी मंडलियों में जब ऐसी बातें सिर उठाती हैं तब विष्वासियों की दृष्टि को क्रूस की ओर तथा मसीह के साथ (उनके पुराने मनुष्यत्व के) सह–क्रूसित होने की सच्चाई की ओर प्रोत्साहित करना बहुत महत्वपूर्ण है, ताकि वे आत्मा के चलाए चलने के मार्ग पर बने (वापस आएं) रहें (इफि0 4:17–19 व 32; कुलु0 2:12–13; गला0 6:1)।

*"प्रभु में सदा आनन्दित रहो, मैं फिर कहता हूं आनन्दित रहो। तुम्हारी कोमलता सब मनुष्यों पर प्रकट हो। प्रभु निकट है"* (फिलि0 4:4–5)। पौलुस ने फिलिप्पी की मंडली के विष्वासियों को प्रभु में सदैव आनन्दित रहने के लिए प्रोत्साहित किया। आनन्द, पवित्र आत्मा के फलों में से एक है। आत्मा के चलाए चलने पर हमारे जीवन में आनन्द प्रकट होगा, परिस्थितियाँ चाहे जैसी भी हों। **शरीर** के अनुसार जीवन व्यतीत करने पर हमारी दृष्टि मसीह में प्राप्त आषिष–अधिकार के बजाए हमारी परिस्थितियों पर केन्द्रित होगी। कहने का मतलब यह है कि हालात अच्छे होने पर हम प्रसन्न होंगे, लेकिन खराब परिस्थितियों में निराष होंगे।

पौलुस यह भी कहता है कि हमारी "कोमलता" सब पर प्रकट होनी चाहिए, क्योंकि "प्रभु निकट है"। विनम्रता भी **आत्मा** का फल है। शरीर के अनुसार जीवन बिताने पर सच्ची विनम्रता नहीं प्रकट होती। इन पदों में पौलुस विष्वासियों को यह याद दिलाता है कि प्रभु का आना निकट है और वह अपने आगमन के बाद पाप व भ्रष्टता को समाप्त कर देगा। अतएव हमें इस जीवन की छोटी–छोटी बातों (पर ध्यान लगाने या झगड़ने) में फंसकर शारीरिकता के भटकावे में आने से दूर रहना है, ताकि आत्मा के अधीन चलते हुए मसीह में प्राप्त अनन्त आषा पर दृष्टि लगाए रहें और **उसमें** निर्दोष पाए जाएं, क्योंकि **उसका** आगमन निकट है।

*"किसी भी बात की चिन्ता न करो, परन्तु प्रत्येक बात में प्रार्थना और निवेदन के द्वारा तुम्हारी विनती धन्यवाद के साथ परमेष्वर के सम्मुख प्रस्तुत की जाए। तब परमेष्वर की शांति, जो समझ से परे है, तुम्हारे हृदय और तुम्हारे विचारों को मसीह यीषु में सुरक्षित रखेगी"* (फिलि0 4:6–7)। हम अपनी शारीरिकता में बहुत सी चीजों के लिए व्याकुल रहते हैं। इस प्रकार, परमेष्वर के प्रेम व अनुग्रह में विष्वास–विश्राम करने से दूर (असफल) रहते हैं। नतीजतन, अपने (आत्मिक) जीवन के लिए परमेष्वर प्रदत्त उपाय (प्राविधान या आषिषों) पर आषा–भरोसा रखने से दूर (असफल) रहते हैं। इस कारण चिन्तित व व्याकुल होते हैं और अपने परिश्रम, युक्ति–जुगाड़ व हाथ–पैर मारने के द्वारा वांछित वस्तु या कार्य–फल को पाना चाहते हैं। इसके विपरीत, पवित्र आत्मा की अधीनता एवं अगुवाई में जीवन बिताने पर हमारी अन्तरात्मा परमेष्वर के प्रेम व दया पर भरोसा रखती है, और तब हम अपनी इच्छा–योजना के लिए संघर्षरत रहने के बजाय अपने जीवन हेतु ईष्वरीय इच्छा–योजना पर विष्वास–विश्राम रखने में समर्थ होते हैं।

केवल आत्मा के चलाए चलने के द्वारा ही परमेष्वर पर आश्रित जीवन (विष्वास के सहारे जीवन) व्यतीत करना संभव है। यहां पौलुस यह भी स्पष्ट करता है कि ऐसे परमेष्वर–आश्रित जीवन के दो चिन्ह प्रकट होंगे : परमेष्वर से धन्यवादपूर्ण प्रार्थना–विनती, तथा हमारे मन व विचारों को शान्त व सुरक्षित रखने वाली ईष्वरीय शांति। तब हम अपनी परिस्थितियों के दबाव से चिंतित, व्याकुल या परेषान नहीं होते।

## सात

*"अतः हे भाइयों, जो जो बातें सत्य हैं, जो जो बातें आदरणीय हैं, जो जो बातें न्यायसंगत हैं, जो जो बातें पवित्र हैं, जो जो बातें मनोहर हैं, जो जो बातें मनभावनी हैं, अर्थात् जो जो उत्तम तथा प्रषंसनीय गुण हैं, उन्हीं का ध्यान किया करो। जो कुछ तुमने मुझ से सीखा, ग्रहण किया, सुना और मुझ में देखा है, उन्हीं का अनुकरण करो और परमेष्वर जो शांति का स्रोत है तुम्हारे साथ रहेगा"* (फिलि0 4:8–9)। इससे पहले के पाठ में हमने यह देखा कि क्रूस पर मसीह द्वारा पूर्ण किए गये उद्धार–कार्य एवं मसीह के साथ एकता (पहचान) की आत्मिक समझ विष्वासी के जीवन में आत्मा के फल उत्पन्न करती है। अब पौलुस यह कहता है कि जो बातें सत्य, आदरणीय, न्यायंगत, पवित्र, मनोहर, प्रीतिकर, उत्तम एवं प्रषंसनीय (गुण) हैं, उन्हीं पर ध्यान–मन लगाना चाहिए। यह सब सद्गुण मुख्यतः मसीह के स्वभाव की ओर इषारा करते हैं। विष्वासीजन जितना अधिक आत्मा की अधीनता में चलेगा, उतना ही अधिक मसीह पर ध्यान–मन लगाएगा; और जब मसीह ही हमारे जीवन का प्रमुख लक्ष्य होगा अर्थात् हमारी दृष्टि उसी पर होगी, तब हम उसी के स्वभाव में ढलते जाएंगे। इसीलिए पौलुस ने फिलिप्पी के विष्वासियों को उन बातों का अनुकरण करने हेतु प्रोत्साहित किया जिन्हें उन लोगों ने उससे सुना था और उसके जीवन आचरण में देखा था। जब मसीह के साथ अपनी आत्मिक पहचान (एकता) को हम विष्वास के द्वारा अपनाते जाते हैं, तब हमारी नयी (आत्मिक) अवस्था दैनिक जीवन–अनुभव का अंग होने लगती है जो हमारे सोच–विचार एवं कार्य–व्यवहार को प्रभावित करती है। तब

जैसै–जैसे हम **आत्मा** के द्वारा जीवन बिताते हैं, वैसे–वैसे हमारे विचार, बात और व्यवहार से खीष्त–जीवन प्रकट होता है।

*"मैं प्रभु में बहुत आनन्दित हूं कि इतने दिनों पष्चात् मेरे प्रति तुम्हारी चिंता पुनः जागृत हुयी। निःसंदेह पहले भी तुम्हें मेरी चिंता तो थी, परन्तु उसे प्रकट करने का अवसर नहीं मिला। मैं अपने किसी अभाव के कारण यह नहीं कहता, क्योंकि मैंने प्रत्येक परिस्थिति में संतुष्ट रहना सीख लिया है। मैं दीन–हीन दषा तथा सम्पन्नता में भी रहना जानता हूं, हर बात और प्रत्येक परिस्थिति में मैंने तृप्त होना, भूखा रहना, और घटना–बढ़ना सीख लिया है। जो मुझे सामर्थ्य प्रदान करता है, उसके द्वारा मैं सब कुछ कर सकता हूं। फिर भी तुमने भला किया कि मेरे क्लेष में सहभागी हुए। हे फिलिप्पियों, जैसा कि तुम स्वयं जानते हो, सुसमाचार प्रचार के कार्य में, जब मैं मैसीडोनिया से विदा हुआ तो तुम्हें छोड़ कोई अन्य कलीसिया लेन–देन के विषय में मेरे साथ सहभागी नहीं हुई। इस प्रकार थिस्सलुनीके में भी तुमने मेरी सहायता के लिए एक बार ही नहीं वरन् अनेक बार दान भेजे। यह बात नहीं कि मैं दान चाहता हूं, वरन् ऐसा फल चाहता हूं जो तुम्हारे लाभ के लिए बढ़ता जाए। मेरे पास सब कुछ है और बहुतायत से है। तुमने इपफ्रुदीतुस के हाथ से जो दान भेजा उसे पाकर मैं संतुष्ट हूं। वह तो मनमोहक सुगन्ध और ग्रहणयोग्य बलिदान है जिस से परमेष्वर प्रसन्न होता है। मेरा परमेष्वर भी अपने उस धन के अनुसार जो महिमा सहित मसीह यीषु में है तुम्हारी प्रत्येक आवष्यकता पूरी करेगा"* (फिलि0 4:10–19)। इस पत्री के समापन की ओर बढ़ते हुए, पौलुस ने उसके प्रति फिलिप्पियों की चिंता–भावना के लिए उन्हें धन्यवाद दिया और यह भी कहा कि उसने प्रत्येक परिस्थिति में संतुष्ट रहना सीखा है – चाहे सम्पन्नता हो या घटी–कमी। इन पदों में व्यक्त

विचार छठवें–सातवें पदों की बात से मेल खाते हैं। अर्थात् जब हम क्रूस पर पूर्ण किए गये ईष्वरीय कार्य पर आषा–भरोसा करते हैं और मसीह हमारे ध्यान–मन का केन्द्र–बिन्दु हो जाता है, तब हमारे मन में शांति व विश्राम रहता है; क्योंकि तब हमारा भरोसा परमेष्वर पर तथा हमारी विष्वास–दृष्टि उसके प्रेम, दया व अनुग्रह पर केन्द्रित होती है। इसीलिए पौलुस कहता है कि आत्मा की अधीनता में रहने से, वह परिवर्तनषील परिस्थितियों के चलाए चलने के बजाय, अपने प्रभु पर विष्वास–विश्राम में अटल व स्थिर रहता है – चाहे घटी हो या सम्पन्नता। बेषक, उसने यह भी स्वीकार किया कि उसकी आवष्यकताओं में फिलिप्पी की मंडली द्वारा दी गयी मदद उसके लिए आषिषप्रद थी; और समय–समय पर फिलिप्पी की मंडली द्वारा उसके लिए भेजी गयी सहायता विषिष्ट एवं महत्वपूर्ण थी। बहरहाल, सिर्फ दान में भेजी गयी चीजें ही (महत्वपूर्ण व) प्रोत्साहन का कारण नहीं थीं; बल्कि यह सब फिलिप्पी के विष्वासियों की जीवन–षैली का परिचायक था। शारीरिकता में जीने वाले लोग दूसरों की आवष्यकताओं की चिंता करने के बजाय सिर्फ अपने लाभ की चिंता करते हैं। पौलुस के प्रति फिलिप्पी के विष्वासियों की उदारता इस बात की साक्षी थी कि वे शारीरिकता के बजाय **आत्मा** में अधिक जी रहे थे। ऐसे जीवन में बढ़ते जाना, इससे प्राप्त आषिषों से आषिषित होना है। उन्नीसवें पद में पौलुस के इन शब्दों पर ध्यान दें : "मेरा परमेष्वर भी अपने उस धन के अनुसार जो महिमा सहित मसीह यीषु में है तुम्हारी प्रत्येक आवष्यकता पूरी करेगा।" यह पद इस बात का वायदा नहीं है कि 'देने वालों को परमेष्वर और अधिक देकर अवष्य पुरस्कृत करेगा'। बल्कि यह परमेष्वर की विष्वसनीयता रूपी सच्चाई को दर्षाता है। वही हमारा स्वर्गिक पिता है। हम उसकी संतान हैं। वह अपनी विष्वसनीयता के

अनुसार हमारी आवष्यकताओं को पूरा करेगा। अतः हम उन लोगों के सहायतार्थ दे सकते हैं, जिनकी जरूरत को (पवित्र) आत्मा हमें दर्षाता है। इसके साथ ही साथ हम इस सच्चाई पर आषा–भरोसा रखते हैं कि परमेष्वर पूर्णरूपेण विष्वसनीय है और हमारी आवष्यकताओं की पूर्ति करेगा।

*"हमारे परमेष्वर और पिता की महिमा युगानुयुग होती रहे। आमीन। प्रत्येक पवित्र जन को जो मसीह यीषु में है, मेरा नमस्कार। जो भाई मेरे साथ हैं, तुम्हें नमस्कार कहते हैं। सब पवित्र लोगों का, विषेषकर कैसर से सम्बन्धित व्यक्तियों का, तुम्हें नमस्कार! प्रभु यीषु मसीह का अनुग्रह तुम्हारी आत्मा के साथ रहे"* (फिलि0 4:20–23)। पौलुस ने जिस प्रकार इस पत्री की शुरुआत की थी, उसी प्रकार इसका समापन भी किया – फिलिप्पी के विष्वासियों की दृष्टि को प्रभु परमेष्वर की ओर आकर्षित करते हुए। पौलुस ने उन्हें पुनः स्मरण दिलाया कि सब कुछ परमेष्वर की महिमा के लिए है। हमारा उद्धार, पवित्रीकरण और महिमान्वित किया जाना, सब कुछ परमेष्वर की ओर से है – उसने अपने "पुत्र" को भेजकर सब कुछ सम्भव (पूरा) किया है। यह सब ईष्वरीय इच्छा, योजना एवं कार्य का परिणाम है, इसमें ऐसा कुछ भी नहीं जिस पर मनुष्य गर्व कर सकता है। मनुष्य को तो सिर्फ उस ईष्वरीय अनुग्रह को ग्रहण करना है जिसके लिए वह बिल्कुल अपात्र था। अन्ततः तेईसवें पद में पौलुस यह कहता है : "**प्रभु यीषु मसीह का अनुग्रह तुम्हारी आत्मा के साथ हो"।** काष, "मसीह में" हमारा जीवन–आचरण ऐसा हो कि उसमें प्राप्त अमूल्य अनुग्रह के प्रति हम निरन्तर जागरूक रहें।

✞ ✞ ✞

इस श्रंखला की पुस्तकों का निम्नलिखित क्रम में अध्ययन ज्यादा लाभप्रद होगा :

1. परमेश्वर-कृत उद्धार
2. प्रेरितों के कार्य
3. वह मुझमें और मैं उसमें
4. रोमियों
5. इफिसियों
6. पहला कुरिन्थियों
7. पहला तीमुथियुस
8. तीतुस
9. पहला और दूसरा थिस्सलुनीकियों
10. प्रकाशितवाक्य
11. गलातियों
12. कुलुस्सियों
13. दूसरा कुरिन्थियों
14. फिलिप्पियों
15. फिलेमोन